Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2019 GISRRJ | Volume 2 | Issue 2 | ISSN : 2582-0095

भारतीय संस्कृति में मानवीय मूल्यपरक शिक्षा की उपयोगिता

डॉ. अश्विनी कुमार
"भूतपूर्व शोधच्छात्र"
संस्कृतविभाग, कलासंकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तर प्रदेश, भारत।

सारांश – संस्कृत वाङ्मय तो मानव मूल्यों की अक्षय निधि बतलायी गयी है और उसमें भी 'वेद' मानवीय मूल्यों की उद्गमस्थली पहले से ही रही है। विश्व वाङ्मय साहित्य का कोई ऐसा साहित्य नहीं, जो मानवीय-मूल्यों का संधारक न हो। विभिन्न भाषाओं का बाह्य कलेवर मानवीय मूल्यों के शाश्वत व चिरंतन सिद्धान्तों का ही चित्रांकन करता है तथा विश्वग्राम के जयघोष से मानवजाति को एक सूत्र में सूत्रित होकर "उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्" भावना को चरितार्थ करता है। जो शिक्षा मानव जाति को मात्र सुविधा व भोग-उपभोग के संसाधन को उपलब्धता कराती हो, वह शिक्षा मूल्यपरक नहीं मानी जा सकती। समस्त शिक्षा का मुख्य प्रयोजन तो मानवीय मूल्यों का समुचित रूप से विकास करना व कराना है।

मुख्य शब्द - देववाणी, मानवीय मूल्य, विश्व-बन्धुत्व, पुरुषार्थ, त्रिवर्ग, निष्काम कर्म, सर्वांगीण विकास, राष्ट्रीय प्रगति, सभ्यता तथा संस्कृति इत्यादि।

विश्व साहित्य वाङ्मय में प्राचीन समय से ही देववाणी संस्कृत मानवीय मूल्य की सम्पोषक, समृद्ध ज्ञानराशि एवं विश्व-बन्धुत्व की उदात्त भावनाओं की पोषिका के कारण भारतीय संस्कृति और समाज का सर्वोत्तम स्थान रहा है। श्रेष्ठ मानवीय मूल्यों के द्वारा श्रेष्ठ समाज का आविर्भाव होता है और वह श्रेष्ठ समाज श्रेष्ठ मानव का निर्माण करता है। समाज व मानव निर्माण का यह कार्य एक दिन में न होकर अनन्त समय से आपसी समझ-बुझ, अनुभवों के माध्यम से समयान्तराल से होता आ रहा है और अग्रिम युगों तक होता रहेगा। मानवीय मूल्यों को समझने से पहले वास्तविक रूप से पहले मूल्य क्या है? इसे पहले समझना और समझाना आवश्यक है।

"मूल्य" शब्द का प्रादुर्भाव संस्कृत के 'मूल' शब्द में 'यत्' प्रत्यय के संयोग से होता है। मूल्य का शाब्दिक अर्थ है- उपयोगिता, वान्छनीयता एवं महत्त्व। सामान्यतः किसी भी समाज में जिन आदर्शों को महत्त्व दिया जाता रहा है और जिनसे उस समाज के व्यक्तियों का व्यवहार निर्देशित एवं नियन्त्रित होता है, उन्हें उस समाज के मूल्य कहते हैं। परन्तु भिन्न-भिन्न अनुशासनों में इन्हें भिन्न-भिन्न रूप में निरूपित किया गया है और अभी तक इनके विषय में कोई सर्वमान्य अवधारणा निश्चित नहीं हो सकी है।

शिक्षा, संस्कृति और मूल्यों का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित है। प्रत्येक समाज, अपनी शैक्षिक, सांस्कृतिक विरासत एवं ज्ञान-विज्ञान के संरक्षण तथा संवर्द्धन हेतु शिक्षा की व्यवस्था करता है। शिक्षा के माध्यम से नयी पीढ़ी को ज्ञान-विज्ञान, नैतिक-मानवीय मूल्यों, परम्पराओं अथवा दूसरे शब्दों में अपनी-अपनी श्रेष्ठ संस्कृतियों का हस्तान्तरण किया जाता है, साथ ही उसे भविष्य की चुनौतियों का सामना करने योग्य बनाने का प्रयास किया जाता है। किसी भी देश या समाज की अक्षुणता, जीवन्तता तथा विकास उसकी सांस्कृतिक अक्षुणता तथा जीवन्तता पर निर्भर करती है और संस्कृति की अक्षुणता तथा उसकी सतत् जीवन्तता एवं प्रवाह बनाये रखने और उसके माध्यम से सामाजिक व सांस्कृतिक अभ्युन्नति के लिए शिक्षा सर्वाधिक सशक्त साधन सिद्ध हुआ है, जिसका मूल्यपरक होना अनिवार्य है।

यह उक्ति यद्यपि सर्वथा सत्य नहीं है कि "उदात्त मानवीय जीवन मूल्यों में तत्कथित भारतीय संस्कृति का ही एकाधिकार है।" क्योंकि दया, ममता, परोपकार, सदाचार आदि सद्गुण प्राय: समस्त जगत् में पुजायमान होते हैं किन्तु धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष इन पुरुषार्थों के माध्यम से जितनी सहजता से इन मानवीय मूल्यों को भारतीय संस्कृति के परिवेश में ग्रहण किया जाता है उतनी सहजता से अन्य किसी संस्कृतियों में स्पष्ट रूप से दिखाई नहीं देती है। मानवीय जीवन के मूल्यों के विषय को ग्रहण करने की जो छमता इस भारतीय संस्कृति में है वह संस्कृति की अपनी एक अलग ही विशेषता है। अत: भारतीय सनातन संस्कृति का यह स्वरूप- इन चार पुरुषार्थों के अन्तर्गत ही आविर्भूत है। भारतीय मानवीय जीवन मूल्यों के रक्षणार्थक ये पुरुषार्थ 'वैदिक संस्कृत' हो या 'लौकिक संस्कृत' समस्त संस्कृत वाङ्मय में अनेक प्रकार से निरूपित की गयी है। इस पुरुषार्थ के विषय में महाभारत के स्वर्गारोहण पर्व 5/50 में व्यास मुनि ने क्रमश: विस्तार पूर्वक बतलाया है कि इन पुरुषार्थों में प्रथम तीन पुरुषार्थ धर्म, अर्थ व काम चरम पुरुषार्थ मोक्ष के साधन बतलाये गये हैं-

धर्मेचार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न कुत्रचित्॥[1]

यही प्रथम तीन पुरुषार्थ त्रिवर्ग कहलाते हैं। इन त्रिवर्गों में भी 'अर्थ' व 'काम' "धर्ममूलक"[2] बतलाये जाते हैं। इसी धर्ममूलकता के कारण इन समस्त पुरुषार्थों में से धर्म नामक पुरुषार्थ का प्रथम स्थान बतलाया गया है। पुरुषार्थों में सर्वत्र उत्कृष्ठ पुरुषार्थ धर्म ही है, जो अर्थ एवं काम की सहायता द्वारा राष्ट्र की यथास्थिति और उत्थान का सम्पादन करता है। यह धर्म ही है जो अर्थ एवं काम जैसे पुरुषार्थ को नियन्त्रित करके मानवीय जीवन के नैतिक कर्तव्यों एवम् उच्चतम आदर्शों के प्रति प्रेरणा प्रदान करता है।

ईशोपनिषद् के अन्तर्गत भी अनासक्तभाव से कर्तव्य पालन का सदुपदेश बतलाया गया है कि कर्म करते हुए सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करनी चाहिए – **"कुर्वन्नेवेहकर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः"।** निष्काम कर्म का सदुपदेश देने वाली यह भारतीय सुसंस्कृति संस्कृत ग्रन्थों पर आश्रित होने कारण ही अन्य राष्ट्रयों की संस्कृतियों से भिन्न है। विदेशी संस्कृतियाँ सकामकर्म को अभिप्रेरित करती हैं, जिसके कारण ये संस्कृतियाँ श्रेयस्कर सिद्ध नहीं हो पाती है। पाश्चात्य संस्कृतियाँ जिस प्रकार भोगों का उपभोग करने का उपदेश देती हैं वैसे समस्त वैदिक व लौकिक संस्कृत पर आधारित भारतीय संस्कृति समस्त सांसारिक भोगों को त्यागने का उपदेश नहीं देती अपितु उन भोगों का उपभोग अनाशक्तिपूर्वक भोगने पर बल देती है। भारतीय संस्कृति भोगों से द्वेष करने की बात नहीं करती अपितु समस्त विचारणीय भोगों का उपभोग विचार पूर्वक करने का उपदेश देती है। जिसके उद्देश्यों की पूर्ति के लिए समस्त आश्रमों में महत्त्वपूर्ण आश्रम गृहस्थ आश्रम की व्यवस्था की गयी है। विषयोपभोग की प्रबल इच्छा मनुष्य के स्वभाव में पहले ही विद्यमान रहती है।

शिक्षा जहाँ एक तरफ मानवीय मूल्यों के माध्यम द्वारा संस्कृति से अपनी आधारभूत सामग्री ग्रहण करती है, वहीं संस्कृति व मूल्यपरक शिक्षा के माध्यम से अपनी प्राणवत्ता तथा अपनी सत्ता बनाये रखती है। यह भारतीय सुसंस्कृति, मानवीय मूल्य एवं शिक्षा परस्पर एक-दूसरे को अत्यधिक प्रभावित करते हैं तथा साथ ही एक-दूसरे के पूरक की भूमिका भी निभाते हैं। वस्तुतः यह भारतीय सुसंस्कृति मानवीय संगठन का सार भाग सिद्ध होता है। इसका निर्णय अनेक संस्कृत के ग्रन्थसूत्रों से सिद्ध होता है, जिनमें से प्रत्येक की पृथक्-पृथक् महत्ता एवं प्राणवत्ता है, किन्तु इनके सुसंगठित स्वरूप से संस्कृति का निर्माण होता है। तब संस्कृति को निम्निलिखित रूप में परिभाषित करना चाहिए-

"किसी समाज की संस्कृति से तात्पर्य उस समाज के व्यक्तियों के रहन-सहन एवं खान-पान की विधियों, व्यवहार प्रतिमानों, आदर्श-विश्वास, संगीत-नृत्य, रीति-रिवाज, भाषा-साहित्य, कला-कौशल, धर्म-दर्शन, आचार-विचार और मूल्यों के उस विशिष्ट रूप से होता है, जिसमें उसकी आस्था होती है और उसकी अपनी पहचान होती हैं।"

मूल्य परक शिक्षा से तात्पर्य-

शिक्षा स्वयम् अपने आप में एक मूल्यपरक अवधारणा है । सामान्य तौर पर जब भी हम शिक्षा की बात करते हैं तो हमारा आशय एक ऐसी प्रक्रिया से होता है जो व्यक्ति को एक सुशिक्षित, सुसभ्य, सुसंस्कृत नागरिक बनाने का कार्य करती है । यह बालक को अपने वातावरण से स्वस्थ सामंजस्य स्थापित करते हुए व्यक्ति और समाज के सदस्य के रूप में अपने उत्तरदायित्व के बेहतर निर्वहन की क्षमता प्रदान करती है ।

मूल्यपरक शिक्षा की व्यवस्था-

भारतीय मनीषियों ने इस तथ्य को हजारों वर्ष पूर्व भली-भाँति समझ लिया था कि व्यक्ति के सर्वांगीण विकास, सामाजिक तथा राष्ट्रीय प्रगति, सभ्यता तथा संस्कृति के उत्थान के लिए शिक्षा अनिवार्य है । परिणाम स्वरूप वैदिक काल से लेकर बौद्ध काल तक हमें नैतिक एवं मानवीय मूल्यों से परिपूर्ण एक आदर्श शिक्षा व्यवस्था का उदाहरण मिलता है, जिसका प्रभाव किसी न किसी रूप में (क्षीण ही सही) आज भी देखा जा सकता है। 'विद्या विहीनः पशुः'[3] की उक्ति विद्या (शिक्षा) की तत्कालीन महत्ता को रेखाङ्कित करती है । मानवीय मूल्यों का तटस्थ उदाहरण महर्षि वाल्मीकि के रामायण ग्रन्थ में स्पष्ट परिलक्षित होता है । वाल्मीकि द्वारा विरचित महाकाव्य "रामायण" में राम तथा महाकवि कालिदास द्वारा विरचित महाकाव्य रघुवंश में नायक राजा दिलीप की चारित्रिक विशेषताओं में मानवीय मूल्यों का चरमोत्कर्ष स्पष्टत: देखा जा सकता है । भगवान् श्रीराम द्वारा पिता के आज्ञा के पालनार्थ राज सिंहासन को परित्याग कर वनवास को प्रस्थान कर गये तथा राजा दिलीप भी गुरु की आज्ञा के पालनार्थ स्वशरीर को सिंह के समक्ष समर्पित कर प्राचीन भारतीय संस्कृति के साथ ही साथ आदर्श व मानवीय नैतिक मूल्यों की रक्षा की । भारतीय संस्कृति में त्याग की भावना व प्राकृतिक शक्तियों की उपासना आदि भाव सदा कठिन परिश्रम का ज्ञान सिखाती है ।

वैदिक ऋषियों ने नैतिक मानवीय मूल्यों के संरक्षणार्थ तथा मानव जीवन के कल्याणार्थ मनुष्य को यज्ञादी अग्निहोत्र करने के लिए आदेश दिया था । प्राचीन समय में प्राय: ऋषि-मुनियों ने प्रत्येक नवीन कार्यों एवं संस्कारों का आरम्भ यज्ञ कर्म करके ही किया करते थे । जिसके कारण उनका लोक-मङ्गलमय जीवन यज्ञमय ही हो गया था । ऋषि-मुनियों ने ही मानव जीवन के कल्याणार्थ यज्ञ की परिकल्पना की थी । ऋषि-मुनियों ने वेदों में मानवीय सुखद जीवन के विभिन्न पहलुओं की मीमांसा प्रस्तुत की है, जिसके अन्तर्गत मनुष्य के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व आर्थिक पक्षों का ही मूल्याङ्कन नहीं की है, अपितु राष्ट्र भक्ति व देश भक्ति आदि भावों को भी उजागर करती है ।

प्राचीन भारत में शिक्षा पुस्तकीय ज्ञान का पर्यायवाची अथवा जीविकोपार्जन का साधन मात्र न होकर व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास तथा मोक्ष प्राप्ति में सहायक मानी जाती थी । डॉ. अल्तेकर के अनुसार- ''वैदिक युग से आज तक शिक्षा के सम्बन्ध में भारतीयों की मुख्य धारणा यह रही है कि शिक्षा प्रकाश का वह स्रोत है जो जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में हमारा सच्चा पथ प्रदर्शन करता है।''4

मानवशास्त्रियों ने मानवीय मूल्यों को सांस्कृतिक लक्षणों के रूप में स्वीकारते हैं । उनकी दृष्टि से भारतीय संस्कृति और मानवीय मूल्य अभिन्न होते हैं, कोई भी संस्कृति अपने मानवीय मूल्यों से ही पहचान की जाती है । उदाहरण के लिए हिन्दू संस्कृति को ही लीजिए । भारतवर्ष चार पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) और पाँच महाव्रतों (सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य) की संस्कृति स्वीकार करता है, सामान्यतः इन्हीं के आधार पर हिन्दू समाज के व्यक्तियों का व्यवहार निर्देशित होता है । अतः ये ही हिन्दू समाज के मूल्य हैं। उनके शब्दों में- 'मानवीय मूल्य मानक रूपी मानदण्ड हैं जिनके आधार पर मनुष्य अपने समक्ष उपस्थित क्रिया विकल्पों में से चयन करने में प्रभावित होते हैं।' अतः इन मूल्यों को निम्नलिखित रूप में परिभाषित किया जाना चाहिए-

"किसी समाज के वे विश्वास, आदर्श, सिद्धान्त, नैतिक नियम और व्यवहार मानदण्ड जिन्हें समाज के व्यक्ति महत्त्व देते हैं और जिनसे उनका व्यवहार निर्देशित एवं नियन्त्रित होता है, उस समाज स्वं उसके व्यक्तियों के मूल्य होते हैं ।"

वर्तमान समय में मूल्यपरक शिक्षा:-

समय सदा परिवर्तनशील रहा है । समय के साथ-साथ व्यक्ति, समाज के रहन-सहन, खान-पान, आचार-विचार, व्यवहार में परिवर्तन होता रहता है । यह परिवर्तन जीवन, जीवन के तौर-तरीकों के प्रति दृष्टिकोण आदि को प्रभावित करता है । जिसके फल स्वरूप शिक्षा भी अप्रभावित नहीं रह सकती । इसीलिए इस परिवर्तनशील समय के साथ-साथ शिक्षा के उद्देश्य भी सदा बदलते रहते हैं । स्वातन्त्र्योत्तर भारत में दुर्भाग्यवश आज तक हम मूल्यों की एक स्पष्ट एवं मान्य परिभाषा भी निश्चित नहीं कर पाये हैं । भारतीय नागरिकों में शिक्षा द्वारा विकसित किये जाने वाले मूल्यों के बारे में हमारे धर्माचार्यों, शिक्षाविदों, मनोवैज्ञानिकों, दार्शनिकों, शिक्षकों एवम् अभिभावकों में आज तक मतैक्य नहीं हो पाया है । फलतः आज शिक्षा के व्यापक प्रचार-प्रसार के बावजूद मानवीय जीवन-मूल्य में ह्रास दिखाई दे रहा है । मानवीय मूल्य पर आधारित जीवन शैली की जरूरत को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक है कि इन मानवीय मूल्यों के

विकास हेतु विशिष्ट एवं संगठित समाज को मूल्यांकित करने का प्रयत्न किये जायें । समय एवं समाज की जरूरतों को ध्यान में रखते हुए विद्वानों ने विविध प्रकार के मूल्यों को निश्चित किया है तथा उन्हें वर्गीकृत करने का प्रयास भी किया है-

रामकृष्ण मिशन संस्थाएँ- समाज-सेवा, सार्वभौमिक भाईचारा, तार्किक नैतिक संहिता तथा मानव व्यक्तित्व के विकास पर बल देती है ।

चिन्मयानन्द मिशन सत्य, सद्आचरण, शान्ति तथा प्रेम के सार्वभौमिक मूल्यों पर बल देता है ।

श्री सत्य साईं बाबा ने मूल्य शिक्षा के अपने कार्यक्रम में पांच प्रमुख मूल्यों पर बल दिया है- सत्य, धर्म, शान्ति, प्रेम तथा अहिंसा। इनके अन्दर समाहित अन्य मूल्य हैं- मानव सेवा, सहयोग, स्वच्छता, प्रार्थना, सादा जीवन व उच्च विचार आदि ।

प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा निदेशालय बीकानेर, राजस्थान के ''नैतिक शिक्षा उपागम'' में पाठ्यक्रमों, पाठ्य पुस्तकें तथा विद्यालय कार्यक्रमों में- अहिंसा, अनुशासन, आत्म विश्वास, आवश्यकता से अधिक संग्रह न करना, ईमानदारी, कत्र्तव्यपरायणता, तत्परता, त्याग की भावना, दया, दान, देशभक्ति, दूसरों का आदर, दूसरों के गुणों की प्रशंसा, दृढ़ निश्चय, धैर्य, निर्भीकता, परोपकार, प्रेम, फिजूलखर्ची न करना, मित्रता, विनम्रता, विश्वबंधुत्व, सच्चाई, सहयोग, सहिष्णुता, स्वावलम्बन, सहानुभूति, समाज-सेवा की भावना, साहस, सादगी, श्रम के प्रति निष्ठा और क्षमा इन 32 जीवन मूल्यों को प्रतिबिम्बित होना जरूरी बताया गया है।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली ने शिक्षा में सामाजिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों पर दस्तावेज में कुल 83 मूल्यों का उल्लेख किया है ।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में उल्लेख है कि हमारा समाज सांस्कृतिक दृष्टि से बहुलवादी है तथा शिक्षा द्वारा ऐसे सार्वभौमिक और शाश्वत् मूल्यों का विकास किया जाना चाहिए जो हमारे लोगों की एकता व उनके समाकलन की ओर अभिमुख हो ।

सन्दर्भ सूची:-

1. महाभारत, स्वर्गारोहण पर्व 5/50
2. त्रिवर्गो यं धर्ममूलोनरेन्द्र राज्यं चेदं धर्ममूलं वदन्ति ॥ महाभारत, वनपर्व 4/4
3. नीतिशतक, भर्तृहरि, (श्लोक 20), व्याख्याकार- श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी, पृष्ठ संख्या 19
4. डॉ.ए.एस. अल्तेकर, एजुकेशन इन एनसियेन्ट इण्डिया: पी.डी. पाठक, भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ, पृष्ठ संख्या- 6